'हिन्दुस्तान' 27.8.1990

अंतरराष्ट्रीय

अमरीका को इराक की खुली चुनौती

शशिधर खां

इराक के शक्तिशाली महात्वाकांक्षी सैनिक तानाशाह सद्दाम हुसैन ने नौ अगस्त को कुवैत पर अधिकार कर लिया। आठ अगस्त की रात को उन्होंने मिसाईलयुक्त पोतों से चारों ओर से कुवैत को घेर लिया और अगले दिन कुवैत के इराक में विलय की घोषणा करते हुए दावा किया कि यह कभी इराक का ही अंग था, इसलिए देर से ही सही इराकी सेना ने बिल्कुल सही काम किया है। कुवैत के अमरीकी पिट्ठू अमीर और तमाम मंत्रियों को रातोंरात देश छोड़कर भागना पड़ा। ये वैसा ही सलूक है जो द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले हिटलर ने चेकोस्लोवाकिया पर कब्जा करने के लिए वहां के ब्रिटेन समर्थित राष्ट्रपति डा. बेन्स के साथ किया था।

वैसे तो यह तमाम महाशक्तियों के लिए



जार्ज बुश : बल प्रयोग की इजाजत

चुनौती है, क्योंकि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद दो-दो बार आपात् बैठक बुलाकर इराक को खामियाजा भुगतने को तैयार रहने की चेतावनी दे चुकी है, लेकिन इराक पर इसका कोई असर नहीं पड़ा है, बल्कि उन्हें इराक ने तमाम विदेशी राजनयिकों (जिनमें अधिकांश अमरीका के हैं) को बंधक बनाकर उनके सामने छोड़ने की ऐसी शर्तें रख दी हैं ताकि उन्हें नीचा दिखाया जा सके।

लेकिन इराक का मुख्य उद्देश्य अमरीका को यह जतलाना है कि सद्दाम हुसैन उससे टक्कर लेने की क्षमता रखते हैं और जोर आजमाईश के लिए हर-हमेशा तैयार हैं। सद्दाम-हुसैन के दावे में बहुत-कुछ सच्चाई भी है। पिछले दस वर्षों में उन्होंने इराक को सैनिक दृष्टि से इतना शक्तिशाली बना दिया है कि उसकी महाशक्तियों की श्रेणी में गिनती होने लगी है और मध्य-पूर्व के अन्य देशों की क्या बिसात सामरिक क्षेत्र में सबसे शक्तिशाली माना जाने वाला देश मिस्र भी बगलें झांकने लगा है।

इस्राईल को तो सद्दाम हुसैन ने खुलेआम कह दिया है कि वह अकेले ही नहीं, अमरीका की बदौलत भी दो-दो हाथ कर ले। राष्ट्रपति हुसैन की दिली तमन्ना अमरीका और इस्राईल को अपनी आंखों के सामने पराजित देखने की है- उसमें भी इस्राईल को और भी ज्यादा, जिसने १९८१ में बमबारी करके इराक की परमाणु भट्ठी नष्ट कर दी थी, जो क्षमता पुनः हासिल करने में इराक को दस बरस लग गये। इस्राईल की सबसे बड़ी ताकत अमरीका का वरदहस्त प्राप्त होना है, इसलिए अमरीका के खिलाफ भी गरल स्वाभाविक है।

अमरीका की बेचैनी इसलिए बढ़ती जा रही है, क्योंकि पश्चिम एशिया में उसके इशारे पर चलने वाले तमाम अरब देश इराक की बढ़ती महात्वाकांक्षा से काफी भयभीत हो गये हैं और अमरीका उन्हें पूर्ण सुरक्षा की गारंटी देने में अपने को पूरी तरह सक्षम नहीं पा रहा है। अमरीका का वश चलता तो इराक को मजा चखा देता, लेकिन अफसोस कि इराक की अभी वो स्थिति नहीं है, जो आठ साल तक चले खाड़ी युद्ध के दौरान थी। इराक ने अपनी एक तिहाई आबादी सेना में तब्दील कर दी है, इसलिए इराक के पास फिलहाल १० लाख सैनिक हैं, जो हर प्रकार के हथियार चलाने से लेकर छापामार युद्ध में महारत हासिल किये हैं। इराकी बजट का सबसे बड़ा हिस्सा मिसाईल, रासायनिक हथियार और जहरीली गैसों के उत्पादन तथा परमाणु भट्ठी पर खर्च होता है। इराक के सारे सैनिक सोवियत जनरलों द्वारा प्रशिक्षित हैं और खाड़ी में हमेशा युद्धाभ्यास करते रहने वाले अमरीकी पोतों को इराकी सीमा में घुसने से रोकने के लिए सोवियत नौसेना के लड़ाकू बमवर्षकयुक्त जंगी जहाज और पनडुब्बियां सदैव मोर्चे पर डटी रहती हैं। और, अमरीका इस बात को बखूबी जानता है, वर्ना उसे इराक के खिलाफ सैनिक नाकेबंदी के लिए अंतर्राष्ट्रीय समर्थन जुटाने की कोई जरूरत नहीं थी। पनामा की तरह इराक में भी सेना भेजकर अमरीका रातोंरात परिवर्तन ला सकता था, लेकिन अमरीका को खाड़ी में कोई भी सोनक कदम उठाने से पहले जरा सोचना पड़ेगा, क्योंकि इराक एक बड़ी ताकत के रूप में उभर चुका है और सद्दाम हुसैन ने यह सारा कुछ जान-बूझकर अंजाम अच्छी तरह सोच लेने के बाद किया है।

सद्दाम हुसैन ने बिल्कुल सही और सटीक प्रस्ताव रखा है। १९ अगस्त को ही उन्होंने साफ एलान कर दिया कि कुवैत से इराकी सेना तभी हटेगी, जब इस्राईल भी गाजापट्टी और अधिकृत क्षेत्र से अपना कब्जा समाप्त कर दे और सीरिया भी लेबनान से अपनी सेना हटा ले। सद्दाम के मुताबिक राष्ट्रसंघ की नजर में जितने क्षेत्रों पर अवैध कब्जे हुए, उन्हें पूरी तरह और एक साथ खाली कराया जाय। सद्दाम हुसैन ने सैनिक शक्ति के प्रदर्शन के साथ-साथ कूटनीतिक सूझ-बूझ का भी परिचय दिया है और अमरीका की हालत सांप-छुछुन्दर जैसी कर दी है। अमरीकी प्रभाव के कारण ही संयुक्त राष्ट्र के कुवैत का इराक में विलय को, अंतर्राष्ट्रीय नियमों का उल्लंघन करार दिया और अब सद्दाम के प्रस्ताव ने महासचिव जेविएर पेछेन द कुइयार की भी बोलती बंद कर दी है, जिन्होंने खाड़ी युद्ध बंद कराने का श्रेय हासिल किया था। इराक को कुछ कहने से पहले उन्हें अमरीका को समझाना होगा, जो शायद संभव नहीं लगता।

सोवियत संघ और चीन से इराक के अच्छे सम्बन्ध रहे हैं। कुवैत पर कब्जा करने के बाद सद्दाम हुसैन ने अपने इन दोनों पुराने मित्रों को अंदर ही अंदर इस बात के लिए राजी कर लिया है कि यह प्रतिष्ठा की लड़ाई है, जिसमें इराक की इज्जत-आबरू दांव पर लगी है और इनके सहयोग के बिना नहीं बच सकती।

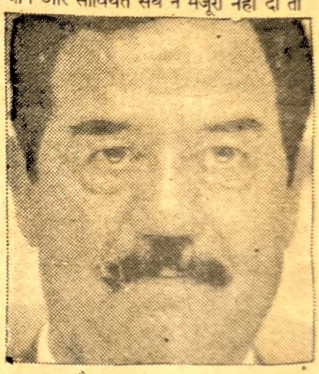
चीन और सोवियत संघ की शक्ति के मामले में अमरीका से प्रतिद्वंद्विता पुरानी है चीन के तो बीच-बीच में तालमेल भी रहे हैं (जब अमरीका के राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन थे) लेकिन सोवियत संघ की तो अमरीका के साथ शीतयुद्ध की स्थिति बराबर रही है। इस बीच दोनों देशों के नेताओं की जितने अनुकूल वातावरण में बातचीत हुई थी उससे तो लग रहा था कि अफगानिस्तान, कम्बोडिया समेत टकराव के सारे मुद्दे शीघ्र ही सुलझा लिये जायेंगे, लेकिन इराक ने फिर दोनों महाशक्तियों को आमने-सामने लाकर रख दिया है और इराक वाला मामला बड़ा खतरनाक मोड़ पर पहुंच चुका है।

इराक को डराने के लिए अमरीका जिस गति से बमवर्षकों और सैनिकों का खाड़ी में जमाव करता जा रहा है, अगर उसमें कमी नहीं आयी तो सोवियत संघ भी चुपचाप बैठा नहीं रहेगा। सद्दाम हुसैन किसी भी कीमत पर कुवैत से अपनी फौज वापस बुलाने को तैयार नहीं हैं, जबकि तकरीबन सभी देश उनसे चेतावनी के तौर पर फौज हटाने को कह चुके हैं। लेकिन सद्दाम ने सबकी चेतावनी को अनसुनी कर दी है, जिसका मतलब है कि वे अमरीका समेत उसके तमाम पश्चिमी समर्थकों से टक्कर लेने की पूरी तैयारी कर चुके हैं।

अपना पक्ष मजबूत बनाये रखने के लिए इराकी राष्ट्रपति ने एक साथ कई चालें खेली हैं। एक ओर तो उन्होंने अमरीका और उसके कृपापात्र देशों (मुख्य रूप से इस्राइल) के कमजोर पक्षों को अंतर्राष्ट्रीय मंच पर उजागर कर संयुक्त राष्ट्र महासचिव को सोचने को विवश कर दिया है, दूसरी ओर अरब देशों की मदद प्राप्त करने के लिए मजहबी भावनाओं को उन्हें जमकर उभाड़ा है क्योंकि अरब देश अमरीकी पिछलग्गू हैं और वे खिलाफ तभी जा सकते हैं, जब उन्हें पूरी तरह यह इत्मिनान करा दिया जाय कि अमरीका उनके मजहबी जजबातों को चोट पहुंचा रहा है। सद्दाम हुसैन का यह तीर बिल्कुल निशाने पर बैठा है और अरब देशों के हजारों लोग उनके हमदर्द बन गये हैं। फलस्तीनी मुक्ति संगठन के अध्यक्ष यासिर अराफात ने उनकी खुलकर तारीफ की है। क्यों न हो, इस्राइली कब्जे के खिलाफ चल रही पी. एल. ओ. की लड़ाई अभी सद्दाम के लिए ढाल का काम कर रही है। ब्रिटेन के मुसलमानों ने सद्दाम को पागल करार देने की कड़ी निंदा की है और उन्हें 'हीरो' बताया है। सबसे बड़ी बात तो यह कि ईरान, ट्यूनीशिया और जॉर्डन जैसे देशों ने इराक के पक्ष में बयान दे दिये हैं। मजहबी मामला अरब देशों का इतना कमजोर तंतु है, जिसे सलीके से हिलाये जाने पर कोई भी मुस्लिम देश इसका शिकार होने से बच नहीं सकता, चाहे वह मिस्र ही क्यों ने हो। १८ अगस्त को जैसे ही अमरीका ने अपने १९ बमवर्षक खाड़ी की ओर रवाना किये, सद्दाम हुसैन ने अपना पहला पासा फेंका। उन्होंने अरब समेत तमाम मुस्लिम देशों से अपील की कि पवित्र मक्का, यरुशलम (जिस पर १९४८ में अमरीका की बदौलत इस्राइल ने कब्जा करके उसे अपनी राजधानी बनाया) और जहाज आदि स्थलों को बाहरी हमलों से बचाने के लिए एकजुट होने का असली वक्त आ गया है। सद्दाम हुसैन की अपील का पर्याप्त असर पड़ा और कई देशों में अमरीका के खिलाफ जबर्दस्त प्रदर्शन हुए। मौजूदा हालात को पश्चिमी देशों से यरुशलम वापस होने और मक्का की आबरू लुटने से बचाने की लड़ाई का रंग देकर सद्दाम हुसैन ने मिस्र और सीरिया को भी पशोपेश में डाल दिया है

अमरीका और ब्रिटेन की पुश्तैनी दोस्ती पूरे ४३ वर्ष बाद अपनी करामात दिखा रही है। दोनों देश धड़ाधड़ अपने पोत खाड़ी में उतार रहे हैं। चीन और सोवियत संघ का रुख पहचाने बिना इराक के खिलाफ सैनिक नाकेबंदी के तहत यह सब हो रहा था, लेकिन २१ अगस्त को जब सुरक्षा परिषद् में सैन्य शक्ति का इस्तेमाल करके इराक की अन्तर्राष्ट्रीय नाकेबंदी के अमरीकी प्रस्ताव को चीन और सोवियत संघ ने मंजूरी नहीं दी तो तत्काल प्रतिक्रियात्मक तौर पर अमरीका ने ४० हजार सैनिकों का दस्ता खाड़ी में उतार दिया, लेकिन अब वह सोचने को मजबूर हो गया है। महाशक्तिशाली होने के बावजूद अमरीका को इराक पर हमला करने की हिम्मत नहीं पड़ रही है, क्योंकि सोवियत संघ पहले ही कह चुका है कि इराक के खिलाफ जो भी अंतर्राष्ट्रीय फौजी कार्रवाई होनी है, संयुक्त राष्ट्र के तहत ही होनी चाहिए और यह भी कि अमरीका को एकतरफा इराक के खिलाफ अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक व व्यापारिक प्रतिबंध लगाने का कोई अधिकार नहीं है। दूसरे में फ्रांस ने भी अभी तक ऐसा कोई रुख नहीं दिखाया है जिससे लगे कि वह अमरीका के सहायतार्थ सेना भेजेगा। लेकिन इराक को खरोंचे बिना वापस लौटना भी ब्रिटेन और अमरीका की शान के खिलाफ बात होगी। भला इराक की क्या हिम्मत कि अमरीका को आंख दिखाये। दूसरे को नीति सिखाने वाले पश्चिमी देशों का आलम यह है कि चारों ओर से इराक को घेरने के लिए सेना भेजने से पहले किसी से नहीं पूछा और इराकी चंगुल से अपने राजनयिकों को छुड़ाने के लिए संयुक्त राष्ट्र महासचिव की खुशामद कर रहे हैं।

फिलहाल काफी जद्दोजहद के बाद शनिवार को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ने अमरीका को इराक पर आर्थिक प्रतिबंध जारी रखने के लिए 'शक्ति का इस्तेमाल' करने की अनुमति दे ही दी। मतलब यह कि इराक पर प्रतिबंधों को लागू करने के लिए अब अमरीका को खुली छूट मिल गयी है। वर्तमान स्थिति में सद्दाम हुसैन और जार्ज बुश आमने-सामने हैं। अभी यह तो पता नहीं चला है कि अमरीका बल प्रयोग के मामले में कितना आगे जायेगा लेकिन इराक के राजदूत (संयुक्त राष्ट्र में) अमीर अल अनबारी की यह आशंका निराधार नहीं लगती कि अमरीका को खुली छूट मिल जाने के बाद युद्ध छिड़ जाने की नौबत आ गयी है। सोवियत संघ भी सीमित ही सही, बल प्रयोग के पक्ष में खड़ा है। ब्रिटेन (मारगिट थैचर) ने तो सद्दाम हुसैन को तानाशाह करार देते हुए कह ही दिया है कि सारी मुसीबत की जड़ वही (सद्दाम) हैं। थैचर ने कहा है 'अगर वहां कुछ होता है तो यह उस तानाशाह की जिम्मेदारी होगी जिसने सेना, बंदूकों और टैंकों के बल पर अपने पड़ोसी देश (कुवैत) पर कब्जा कर लिया है।' मतलब यह कि यदि किसी एक ने पैर पीछे न खींचे तो युद्ध सर पर सवार है- इसका स्वरूप क्या कुछ कहना मुश्किल है।



सद्दाम हुसैन : खाड़ी संकट की जड़ में।